□ डा. कृपाशंकर व्यास एम. ए., पी-एच. डी.

[संस्कृत विभाग, शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, शाजापुर (म० प्र०)]

नयवाद
सिद्धान्त और व्यवहार की तुला पर

□

भारत मूलतः दर्शन का देश है। विश्व के श्रेष्ठतम दर्शन इस देश ही में जन्मे और यहीं स्वस्थ प्रतिस्पर्धात्मक वातावरण में पनपे। यहाँ का दार्शनिक चिन्तन आध्यात्मिक दृष्टि से मण्डित है। इसी दार्शनिक तत्व-चिन्तन ने ही भारतीय सत्यता और संस्कृति को समय की विडम्बना, काल की क्रूरता और इतिहास की निर्ममता को झेलने की अपूर्व शक्ति प्रदान की है। बाह्य आक्रमणों की शृंखला और आन्तरिक फूट ने यहाँ की सभ्यता, संस्कृति तथा विचारशक्ति को ध्वस्त करके, निश्शेष करने की दुरभिसन्धि की, परन्तु दार्शनिक तत्व-चिन्तन की असाधारणता तथा अपूर्वता ने अपनी अपराजेयता का परिचय देते हुए सांस्कृतिक मूल्यों और सभ्यता की उपलब्धियों को मिटने से बचाया है और भारतीय मानस को सदैव व्यापकता तथा उदारता की भूमि पर अवतरित करने की भूमिका का सोत्साह निर्वाह भी किया है। भारतीय दर्शन अनुभव और संघर्ष के आधार पर निर्मित दृष्टि का पर्याय होने के कारण न वह गिरिकन्दरा का दर्शन है और न एकांतिकता तथा व्यक्ति-निष्ठता से अभिशप्त ही है। अपितु वह आध्यात्मिक दृष्टि सम्पन्न होने के कारण संसार को रहने योग्य और स्वर्गतुल्य बनाने की छटपटाहट लिये हुए है। अतः भारतीय दर्शन को मात्र किताबी तथा बकवासी समझना बुद्धि-संकीर्णता को प्रदर्शित करना होगा। यहाँ का दर्शन जीवनोन्मुखी है, इसीलिए यह प्रवृत्तिमूलक और निवृत्तिमूलक चिन्तन के मध्य एक सेतु बन सका है।

भारतीय दर्शनधारा मानव मस्तिष्क के अन्तहीन, शाश्वत, मूल्यवान् गवेषणात्मक चिन्तन का दृष्टान्त है, जो पुरातन होने पर भी सदा नवीन परिवेश में है। जीवन के मूल्य बदल जायें, देश-काल की परिस्थितियों में भिन्नता आ जाए किन्तु भारतीय चिन्तन-धारा का प्रवाह सार्वकालिक समस्याओं के हल हेतु सदा नित्य नये रूप तथा वेग में प्रस्तुत था, है, और रहेगा। यह है भारतीय चिन्तनधारा की सार्वकालिकता। विचारों के आदान-प्रदान की स्वतन्त्र प्रक्रिया ने भारतीय विचारधारा को अनेक रूप प्रदान किए हैं, जिनमें सह-अस्तित्व का आदर्श विद्यमान है। इसी प्रक्रिया ने ही एक विचारधारा के अन्तर्गत अनेक सूक्ष्म विभिन्न विचारधाराओं को भी जन्म दिया है, इसीलिए एक ही वस्तु के स्वरूप की अभिव्यक्ति में पर्याप्त भिन्नता लक्षित होती है। इस सहजगम्य भिन्नता को जैनदर्शन ने "नयवाद" से अभिहित कर इसे दार्शनिक रूप में प्रस्तुत कर नवीन सिद्धान्त को जन्म देने का श्रेय प्राप्त कर लिया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैनदर्शन के अनुसार वस्तु अनन्तधर्मात्मक होती है। वस्तु के समस्त धर्मों का यथार्थ ज्ञान केवल उसी व्यक्तिविशेष को होता है जिसने कैवल्य ज्ञान को अधिगत कर लिया है पर दिक्भ्रम मानव समाज में इतना सामर्थ्य कहाँ है कि वह प्रत्येक वस्तु के समस्त धर्मों का यथार्थ ज्ञान आत्मसात् कर सके।[1] मनुष्य-ज्ञान की संकुचित सीमाओं के कारण ही मनुष्य वस्तु के एक या कुछ धर्मों का ज्ञान प्राप्त कर लेना ही श्रेयस्कर समझता है अतः उसका ज्ञान आंशिक होता है। जैनदर्शन वस्तु के इस आंशिक या एकांशिक ज्ञान को "नय" नाम से अभिहित करता है।

"नय सिद्धान्त[2]" जैनदर्शन के प्रमुख सिद्धान्त "अनेकान्तवाद" की आधारशिला है। यह समझना अनुचित होगा कि "नय सिद्धान्त" एकान्तवाद का प्रतिपादक है, अतः एकान्तवाद और अनेकान्तवाद में पूर्ण विरोध है। वस्तुस्थिति पर विचार करने से प्रत्येक ज्ञान का आंशिक या सापेक्ष होना ही न्यायसंगत प्रतीत होता है, पर वास्तविक ज्ञान इससे भिन्न है। इसी कारण से वस्तु के परिज्ञान के इच्छुक जन को प्रथम आंशिक (विकलादेश) ज्ञान पश्चात् पूर्ण (सकलादेश) ज्ञान होता है। वास्तविक ज्ञान का प्रथम सोपान आंशिक ज्ञान ही है। जिस प्रकार कोई व्यक्ति गन्तव्य पर पहुँचने के लिए सोपान का आश्रय लेकर ही लक्ष्य की ओर अभिमुख होता है तथा अन्त में अपने लक्ष्य को अधिगत कर लेता है, उसी प्रकार आंशिक ज्ञान का आश्रय लेकर ही व्यक्ति वस्तु का पूर्ण-ज्ञान क्रमशः प्राप्त कर सकता है।[3] इस प्रकार आंशिक ज्ञान तथा पूर्ण ज्ञान में किसी भी प्रकार का विरोध परिलक्षित नहीं होता है अपितु ये दोनों ज्ञान एक दूसरे के पूरक ही सिद्ध होते हैं।

स्थूलतया ज्ञान के तीन भेद किये जाते हैं—[4]

(१) दुर्नय (२) नय (३) प्रमाण

१. **दुर्नय**—विद्यमान रहने वाली वस्तु के एक धर्म को यदि सदैव विद्यमान ही सिद्ध करने की चेष्टा की जाये तथा वस्तु के अन्य धर्मों का निषेध किया जाये तो व्यक्ति की इस प्रवृत्ति को दुर्नय कहा जायेगा।

२. **नय**—वस्तु के अन्य धर्मों का निषेध न करते हुए वस्तु के केवल एक सत् धर्म की ही प्रस्तुति की जाये, वस्तु का यह आंशिक ज्ञान "नय" विचारधारा के अन्तर्गत आता है।

३. **प्रमाण**—"दुर्नय" तथा "नय" विचारधारा से भिन्न विचारधारा प्रमाण है। विद्यमान वस्तु के विषय में "कथंचित् यह सत् है" (स्यात्सत्) यह दृष्टिकोण वस्तु के ज्ञात तथा अज्ञात समस्त धर्मों में संकलित होने के कारण प्रमाण शब्द से अभिहित किया जाता है।

वस्तु चूँकि अनन्तधर्मात्मक है अतः प्रत्येक धर्म-विशेष के निरूपण करने के कारण नयों की संख्या भी अनन्त है, परन्तु विवेक दृष्टि से उसके सामान्यतः दो भेद मान्य हैं—[5]

१. द्रव्यार्थिक नय २. पर्यायार्थिक नय।

---

१ (अ) **एकदेश विशिष्टो यो नयस्य विषयो मतः** —न्यायावतार श्लोक २९

(ब) "नय" शब्द की निरुक्ति—

नीयते परिच्छिद्यते एक देश विशिष्टोऽर्थः अनेन इति नयः।

—स्याद्वाद मंजरी पृ० १५९

२ (क) भारतीय दर्शन—बलदेव उपाध्याय पृ० १००

(ख) भारतीय दर्शन—डा. उमेश मिश्र पृ० १२७-२८

३ **"प्रमाणनयैरधिगमः"** तत्वार्थसूत्र १।६

४ स्याद्वाद मंजरी श्लोक २८

५ स्थानांग सूत्र स्था० ७, अनुयोगद्वार सूत्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किसी भी वस्तु के दो धर्म सम्भव हैं (१) एक तो वह जिसके कारण वस्तु की विविध परिणामों के बीच एकता बनी रह सकती है। इसकी ही संज्ञा द्रव्यार्थिक नय है। (२) दूसरे वे धर्म जो देश तथा काल के कारण किसी वस्तु में उत्पन्न हुआ करते हैं। इन विशेष धर्मों के निरूपण को ही पर्यायार्थिक नय संज्ञा दी गई है।

प्रथम नय तीन प्रकार का है[६] तथा द्वितीय नय चार प्रकार का है। दोनों का समयोजन करने पर 'नय' के सात प्रकार किये जाते हैं—

(१) नैगमनय (२) संग्रहनय (३) व्यवहारनय (४) ऋजुसूत्रनय (५) शब्दनय (६) समभिरूढ़नय (समधिरूढ़नय) (७) एवंभूतनय।

इन समयोजित सप्त नय में से प्रथम चार पदार्थों अथवा उनके अर्थों के साथ सम्बद्ध हैं और शेष तीन शब्दों से सम्बन्ध रखते हैं। ये सभी यदि अपने आप में पृथक् एवं पूर्ण रूप में लिए जायें तो हमें हेत्वाभास (मिथ्या आभास) ही प्रतीत होंगे। अर्थ (पदार्थ एवं अर्थ) नय अधोलिखित हैं—

(१) **नैगमनय**—इसकी व्याख्या दो प्रकार से की जा सकती है। आचार्य पूज्यपाद का मत है कि यह एक प्रयत्न विशेष के प्रयोजन अथवा लक्ष्य से सम्बन्ध रखता है जो कि बराबर और निरन्तर उसके अन्दर विद्यमान रहता है। जब हम ऐसे किसी एक व्यक्ति को देखते हैं जो जल, अग्नि, पात्र आदि ले जा रहा है और हम उससे प्रश्न करते हैं कि 'तुम क्या कर रहे हो' तो व्यक्ति प्रत्युत्तर देता है कि "मैं भोजन पका रहा हूँ।" यह नैगमनय का दृष्टान्त है। यह सिद्धान्त सामान्य प्रयोजन का बोध कराता है। आचार्य सिद्धसेन का मत इससे कुछ भिन्न है। उनका कथन है कि जब व्यक्ति एक वस्तु का ज्ञान अधिगत करता है अर्थात् उसके अन्तर्गत जातिगत एवं विशिष्ट दोनों प्रकार के गुणों को पहचान लेता है और उनके मध्य पृथक्करण की भावना नहीं रखता है तब वह नैगमनय की अवस्था कहलाती है।

(२) **संग्रहनय**—यह नय सामान्य विशिष्टताओं पर बल देता है। यह वर्गगत दृष्टिकोण है। यद्यपि यह सत्य है कि वर्ग व्यक्तियों से अतिरिक्त कोई विशिष्ट पदार्थ नहीं है किन्तु फिर भी सामान्य विशेषताओं का परीक्षण कभी-कभी आवश्यक होता है। इसके दो भेद स्वीकार किये गये हैं—

(१) परसंग्रहनय, (२) अपरसंग्रहनय।

(३) **व्यवहारनय**—यह नय प्रचलित तथा परम्परागत है। व्यक्ति को वस्तु का ज्ञान समस्त रूप से होता है और व्यक्ति इसकी निहित विशेषताओं पर बल देता है। वस्तुओं का विशिष्ट आकार-प्रकार भी व्यक्ति का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करता है। भौतिकवाद की कल्पना और बहुतत्ववाद को भी हम इसके साथ सम्बद्ध कर सकते हैं। ये सभी इस नय के आभास हैं।

(४) **ऋजुसूत्रनय**—यह नय व्यवहारनय की अपेक्षा अत्यधिक संकुचित है। यह पदार्थ की एक समयविशेष की अवस्था का विचार करता है। इसमें सभी के प्रकार के नैरन्तर्य एवं साम्य को

---

६ (क) नयकर्णिका, आरा संस्करण तत्वार्थ राज० वा० १।३३, ३४-३५
(ख) प्रमाणनयतत्वालोक ७।१३, ३२, ३६। तत्वार्थ राजवर्तिक १, ३३, ६
(ग) लघीयस्त्रय ३, ६, ७०-७१
(घ) द्रव्यानुयोगतर्कणा,
(च) भारतीय दर्शन, भाग १, डा० राधाकृष्णन्, पृ० २७५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्थान नहीं है। इस नय के अनुसार यथार्थ क्षणिक है। वस्तु का जो रूप विद्यमान है वह केवल वर्तमान क्षण में ही है। इसे हम बौद्धदर्शन के क्षणिकवाद का दूसरा रूप कह सकते हैं।

शेष तीन नय को शब्दनय के नाम से अभिहित किया जाता है—

(५) **शब्दनय**—इस नय का मत है कि व्यक्ति किसी वस्तु के विषय में किसी विशिष्ट नाम का प्रयोग करता है। यह प्रयोग वस्तुतः व्यक्ति के मन में निहित वस्तुविशिष्ट के गुण, क्रिया आदि से सम्बन्धित होने के कारण ही होता है। प्रत्येक नाम अपने एक विशिष्ट अर्थ का संवाहक होता है। इसीलिए विशिष्ट नाम से विशिष्ट गुण-क्रिया वाली वस्तु का बोध व्यक्ति को सम्भव होता है। अतः यह निष्कर्ष निकलता है कि पद तथा अर्थ में विशिष्ट सम्बन्ध होता है जो कि सापेक्ष सिद्धान्त पर आधारित है।

(६) **समभिरूढनय**—यह नय पदों में उनके धात्वर्थ के आधार पर भेद स्थापना करता है। यह नय शब्द-नय का विनियोग या प्रयोग है।

(७) **एवंभूतनय**—यह समभिरूढनय का विशिष्ट रूप है। किसी वस्तु के नानात्मक पक्षों में, उसकी श्रेणी-विभाजन में तथा उसकी अभिव्यक्ति में केवल एक ही पद के धात्वर्थ से यह नय सूचित होता है। यह नय पद के वर्तमान स्वरूप को व्यवहृत करने वाला समयोचित अर्थ है किन्तु उसी पदार्थ विशेष को भिन्न परिस्थिति में भिन्न रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है।

उपरि वर्णित प्रत्येक नय अथवा दृष्टिकोण विविध प्रकारों में से, जिनसे पदार्थ का ज्ञान किया जा सकता है, केवल एक ही प्रकार को प्रस्तुत करता है। यदि किसी एक दृष्टिकोण को व्यक्ति भ्रमवशात् सम्पूर्ण ज्ञान समझ ले तो यह ज्ञान नयाभास की कोटि में आ जायेगा।

तत्वों के स्वरूप विवेचनार्थ नय के दो अन्य[७] भेद भी दार्शनिकों द्वारा मान्य हैं—

(१) निश्चयनय (२) व्यवहारनय

निश्चयनय के माध्यम से तत्वों के वास्तविक स्वरूप तथा उनमें निहित सभी गुणों का निर्धारण होता है। जबकि व्यवहारिक नय के द्वारा तत्वों की सांसारिक उपादेयता पर विचार किया जाता है। "नय" के इसी भेद के कारण इसके सम्बन्ध में प्रचलित भ्रान्तियों का खण्डन सम्भव हो सका है।

परिवर्तनशील युग में "नय" का व्यवहारिक रूप नये युग के नये मूल्यों का संवाहक बन सकता है या नहीं यह विचारणीय प्रश्न है। इस सन्दर्भ में आज के वातावरण तथा "नय" का व्यवहारिक परिवर्तित रूप का क्रमशः विवेचन करना न्यायसंगत होगा।

आज का मानव जिस भौतिकता के उच्चतम शिखर पर पहुँच गया है वहाँ उसकी समस्त धार्मिक मान्यताओं के समक्ष प्रश्नवाचक चिह्न लग गया है। भौतिकवादी संत्रासयुग में समाज के

---

७ (अ) भगवती सूत्र, श० १८, उ० ६

(ब) दिट्ठीय दो णया खलु ववहारो निच्छओ चेव।

—आवश्यक निर्युक्ति ८१५ (आचार्य भद्रबाहु)

(स) "ववहारणयो भासदि जीवो देहो य हवदि खलु इक्को।
ण दु णिच्छयस्स जीवो देहो य कदापि एकट्ठो॥

—समयसार २७ तथा समयसार ८वीं गाथा द्रष्टव्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत्येक घटक में घृणा, अविश्वास, मानसिक तनाव एवं अशान्ति के बीज प्रस्फुटित हो रहे हैं। आत्मग्लानि, व्यक्तिवादी दृष्टिकोण, आत्मविद्रोह, अराजकता, आर्थिक विषमता, हड़ताल आदि सभी जीवन की लक्ष्यहीनता की ही ओर इंगित कर रहे हैं। इसका कारण आज की वैज्ञानिक दृष्टि है जो कि मनुष्य को बौद्धिकता के अतिरेक का स्पर्शमात्र करा रही है, जिससे मनुष्य अन्तर्जगत की व्यापक सीमाओं को संकीर्ण कर अपनी बहिर्जगत की सीमाओं को ही प्रसारित करने में यत्नशील हो गया है। अतः वर्ग-संघर्ष बहुल द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी युग में क्या प्राचीन मनीषियों द्वारा प्रतिपादित कोई सिद्धान्त शाश्वतकालीन होकर सामाजिक सम्बन्धों को सुमधुर एवं समरस बनाने में सक्षम है? इस जटिल प्रश्न का उत्तर यदि जैनदर्शन के परिप्रेक्ष्य में प्राप्त करने का प्रयास किया जाये तो पूर्वाग्रह रहित कहा जा सकता है कि मानव नयसिद्धान्त के स्वरूप को समझकर उसके अनुरूप आचरण करे तो अवश्य ही आज के आपाधापी के युग में वैचारिक ऊहापोह के झंझावातों से अपने को मुक्त कर आत्मोन्नति के प्रगतिपथ को प्रशस्त कर सकता है।

अद्यतन बौद्धिक तथा तार्किक प्राणायाम के युग में व्यक्ति की समस्याओं के समाधान हेतु ऐसे धर्म तथा दर्शन की आवश्यकता है जो आग्रहरहित दृष्टि से सत्यान्वेषण की प्रेरणा दे सके। इस दृष्टि से भी नयवाद तथा प्रमाणवाद समय की कसौटी पर खरा ही उतरता है। अनेकान्तवाद का अर्थ है कि प्रत्येक पदार्थ में विविध धर्म तथा गुण हैं। सत्य का सम्पूर्ण साक्षात्कार साधारण व्यक्ति की ज्ञानसीमा से सम्भव नहीं है अतः वह वस्तु के एकांगी गुण, धर्मों का ही ज्ञान प्राप्त कर पाता है। इस एकांगी-ज्ञान के कारण ही वस्तु के स्वरूप-प्रतीति में भी पर्याप्त भिन्नता लक्षित होती है किन्तु इस भिन्नता का यह अर्थ कदापि नहीं है कि वस्तु का एकांगी धर्म ही सत्य है तथा अन्य धर्म असत्य है। "नयवाद" के उपरोक्त स्वरूप की स्पष्ट अभिव्यक्ति हेतु 'नयवाद' का विश्लेषण अधोलिखित बिन्दुओं के आधार पर किया आ सकता है।

नयवाद[८] के जीवन को छूने वाले विशेष बिन्दु

१. स्वमत की शालीन प्रस्तुति,

२. स्वमत के प्रति दुराग्रह का अभाव,

३. अन्य मत के प्रति विनम्र एवं विधेयात्मक दृष्टि।

१ नयवाद का स्पष्ट अर्थ है कि अनन्तधर्मात्मक वस्तु के एक धर्म की सांगोपांग प्रतीति। यह वाद विषय के प्रति व्यक्ति का दृष्टिकोण है। जिसके आधार पर व्यक्ति किसी पदार्थ के विषय में अमूर्तीकरण (भेदपृथक्करण) की प्रक्रिया को कार्यान्वित करता है। इस दृष्टिकोण की कल्पनाओं अथवा आंशिक सम्मतियों का जो सम्बन्ध है वह अभीष्ट उद्देश्यों की उपज होती है। इस भेद-पृथक्करण एवम् लक्ष्यविशेष पर बल देने के कारण ही व्यक्ति के ज्ञान में सापेक्षता आती है। किसी विशेष दृष्टिकोण को स्वीकार करने का तात्पर्य यह नहीं है कि व्यक्ति अन्य दृष्टिकोणों का खण्डन कर रहा है। नयवादी का यह महत्त्वपूर्ण कर्तव्य है कि वह केवल-मात्र स्वमत की शालीन प्रस्तुति करे क्योंकि एक व्यक्ति का दृष्टिकोण विशेष सत्य के उतने ही समीप है जितना कि अन्य व्यक्ति का उसी वस्तु सम्बन्धी दृष्टिकोण। यह भिन्न बात है कि वस्तु के सापेक्ष समाधान में ऐसे अमूर्तीकरण हैं जिनके अन्तर्गत यथार्थ-सत्ता का तो समावेश हो जाता है किन्तु वे वस्तु की पूर्णरूपेण

---

८ सयं सयं पसंसंता गरहंता परं वयः।
जे उ तत्थ विउस्सन्ति संसारं ते विउस्सिया॥

—सूत्रकृतांग १।१।२।२३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

व्याख्या नहीं कर सकते हैं। इसीलिए नयवादी के लिए नितांत आवश्यक है कि वह केवल स्वमत के प्रस्तुतीकरण का ही कार्य करे।

२ **नयवाद** का सिद्धान्त एकांशभूत ज्ञान का सिद्धान्त अवश्य है किन्तु हठवादिता तथा दुराग्रह का सिद्धान्त नहीं है। न तो नयवाद पर यह आक्षेप ही लग सकता है कि "नयवाद" वस्तु के केवल एकांशभूत ज्ञान को ही ज्ञान की इतिश्री समझ लेना प्रतिपादित करता है और न "नयवादी" को एकांशभूत ज्ञान प्राप्त कर लेने पर कूपमण्डूक होने का उपदेश ही देता है। "नयवादी" अपने पक्ष को प्रतिपादित करने में किसी भी प्रकार के कदाग्रह का आश्रय नहीं लेता है, अपितु मात्र मत-प्रस्तुतीकरण का आश्रय लेता है, चाहे उस मत को अन्य व्यक्ति स्वीकार करें या न करें। व्यवहारिक जगत् में सम्भवतः नयवाद का यह पक्ष निर्बल प्रतीत होता है, कारण कि व्यक्ति अपने मत की स्थापना करते समय विषय के प्रति दृढ़ता का परिचय शक्तिशाली शब्दों से देता है, जबकि नयवाद इस प्रकार के दृष्टिकोण के प्रतिपादन करने के पक्ष में नहीं है।

३ नयवाद का पक्षधर केवल वस्तु के एकांशभूत ज्ञान को प्राप्त कर लेना ही अपनी ज्ञानपिपासा के लिए पर्याप्त नहीं समझता है अपितु वह वस्तु के अन्यधर्मों का भी ज्ञान प्राप्त करने को सतत यत्नशील रहता है। वस्तु के अन्यधर्मों का ज्ञान होने पर भी अन्य व्यक्ति के द्वारा प्रस्तुत वस्तु सम्बन्धी दृष्टिकोणों को नयवादी खंडन नहीं करता है अपितु वह अन्य के दृष्टिकोण को शान्त-भाव से सुनता है।

कतिपय विद्वानों का यह अभिमत है कि जैनदर्शन द्वारा प्रतिपादित आंशिक ज्ञान (नय-ज्ञान) ने ही जगत् में पारस्परिक कलह को उग्रता प्रदान की है। वैसे तो प्रत्येक दर्शन इस विचित्र रूपात्मक विश्व के ही आद्योपान्त विवेचन में व्यस्त है किन्तु फिर भी दार्शनिक विचारों के ऊहापोह को प्रत्येक दर्शन एक विशिष्ट अंश तक ही सीमित रखता है। दर्शन जगत् में पारस्परिक विद्वेष का कारण अपने-अपने सीमित विवेचनों को ही सत्य तथा न्यायसंगत सिद्ध करना है। विषय सम्बन्धी दार्शनिकों का दृष्टिकोण हाथी के स्वरूप निर्णय के विषय में झगड़ा करने वाले अन्ध व्यक्तियों के पारस्परिक दृष्टिकोण के समान है। किन्तु जैनदर्शन का स्पष्ट मत है कि नानारूपिणी सत्ता के अंशमात्र का विवेचन वस्तु का यथार्थ तथा पूर्ण ज्ञान अधिगत करने का प्रथम सोपान है, क्योंकि नयवाद साध्य नहीं अपितु अनेकान्तवाद के स्वरूप निर्णय का साधन है। अतः जैनदर्शन में वैचारिक भिन्नता को तो स्थान है किन्तु उसके कारण होने वाले पारस्परिक विरोध को स्थान नहीं है।

विचारस्वातन्त्र्य के युग में चूँकि प्रत्येक व्यक्ति हर विचारधारा को समय की उपयोगिता की कसौटी पर कसकर उसका मूल्यांकन करने का पक्षपाती हो गया है, अतः इस वाद की भी उपयोगिता सामाजिक तथा राजनैतिक जीवन में कुछ है अथवा नहीं यह एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। इस प्रश्न का समाधान नयवाद के दृष्टिकोण से सम्भव है। यदि आज के वैचारिक क्षेत्र में व्यक्ति नय-सिद्धान्त को आधारभूत मानकर विषय या तत्व सम्बन्धी दृष्टिकोण प्रस्तुत करने का पक्षपाती हो जाये तो व्यक्तियों के जीवन में विचार सम्बन्धी मतभेद से होने वाला विरोध स्वतः समाप्त हो जायेगा। व्यक्ति को अपने विचारों को अन्य पर थोपने का न तो समय मिलेगा और न स्वमत-पुष्टि हेतु आग्रह करने का व्यक्ति को अवसर ही मिलेगा। जबकि इससे विपरीत व्यक्ति को दूसरे के दृष्टिकोण को सहिष्णुता पूर्वक सुनने, समझने का पूर्ण अवसर मिलेगा, जिससे व्यक्ति स्वमत का पुनर्मूल्यांकन कर सकने का लाभ ले सकता है। इस प्रकार विवेकीकृत दृष्टिकोण से न केवल व्यक्ति की ही उन्नति हो सकती है अपितु समाज तथा देश की उन्नति का भी मार्ग प्रशस्त हो सकता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यदि व्यक्ति (चाहे वह राजनैतिक क्षेत्र का कार्यकर्ता हो या सामाजिक क्षेत्र का) केवल मात्र स्वमत का ही आग्रह करता रहेगा तो उस व्यक्ति के जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में विरोध की अभिवृद्धि ही होती रहेगी। परिणामतः द्वेष, कटुता, संघर्ष, हिंसा आदि बुरी प्रवृत्तियों को जन्म मिलेगा। ऐसे अवसर पर व्यक्ति विरोध पर विजय प्राप्ति हेतु येन-केन-प्रकारेण प्रयास करेगा, जिसका फल होगा व्यक्ति की नैतिकता का अवमूल्यन। इस प्रकार व्यक्ति की संगठनात्मक तथा क्रियात्मक शक्ति विघटन तथा विध्वंसक कार्यों की ओर अभिमुख हो जायेगी, जिसके परिणाम आज हम सभी किसी-न-किसी रूप में अनुभव कर रहे हैं। अतः इस संत्रस्त तथा कुंठाग्रस्त युग की आवश्यकता है कि युवाशक्ति को विवेकीकृत ज्ञान से असहिष्णुता, दुराग्रह तथा हठवादिता के पथ से शालीनता पूर्वक विमुख कर उसे वैचारिक-धरातल पर सहिष्णुता, सह-अस्तित्व तथा समरसता के सिद्धान्त की ओर दिशा देने की। तभी व्यक्ति, समाज तथा राष्ट्र न केवल भौतिक उन्नति के चरम बिन्दु पर पहुँच सकता है अपितु पुनः अध्यात्मजगत का गुरुपद अधिगत कर सकता है। इस प्रकार नयवाद का पक्षधर विशालहृदय, उदारचेत्ता होकर विश्वबन्धुत्व सर्वजनीन का पोषक होकर भगवान महावीर के "जियो और जीने दो" के सिद्धान्त का यथार्थ मसीहा बन सकता है।

आनन्द-वचनामृत

- ☐ विद्वान और समझदार से मित्रता करना कठिन है, किंतु निभाना सरल है। मूर्ख और नासमझ से मित्रता करना सरल है, किंतु निभाना कठिन है।
- ☐ साधारण मनुष्य ऊबने पर मनोरंजन के साधनों की तलाश करता है, किंतु ज्ञानी साधक मनोनिमग्न (मन के भीतर डूबने) होने की चेष्टा करता है। मन का ऊबना प्रमाद है, मन के भीतर डूबना साधना है।
- ☐ काम करते-करते थक जाने पर नीरसता आती है, काम करते-करते पक जाने पर सरसता मिलती है।
- ☐ शिक्षा से भी अधिक महत्व है संस्कारों का। अशिक्षित व्यक्ति या कम शिक्षित व्यक्ति भी साधना के पथ पर बढ़ सकता है, और साधना के चरम शिखर तक पहुँच भी सकता है, किंतु संस्कार-हीन व्यक्ति के लिए साधनापथ पर एक चरण रखने को भी स्थान नहीं।
- ☐ संस्कारहीनता साधना का सबसे पहला शत्रु है।
- ☐ शिक्षा से संस्कार जगें या नहीं, पर सुसंस्कारों से शिक्षा (ज्ञान) अवश्य प्राप्त हो जाती है।
  संस्कार-हीन शिक्षा निष्प्राण देह की सज्जा है।
  संस्कार-युक्त शिक्षा प्राणवान देह का शृंगार है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org